अक्षरा

मई-जून 2017

150

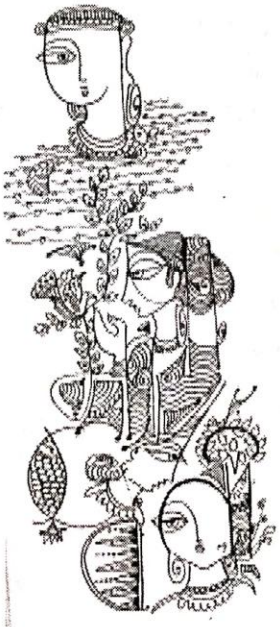

कैलाशचन्द्र पन्त
प्रधान सम्पादक

सुशील कुमार केड़िया
प्रबंध संपादक

डॉ. सुनीता खत्री
सम्पादक

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 150 रुपए (साधारण डाक) 225 रुपए (कोरियर से)
पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क : 1000 रुपए (साधारण डाक) 1500 रुपए (कोरियर से)
आजीवन सदस्यता शुल्क : 2000 रुपए (साधारण डाक) 3000 रुपए (कोरियर से)
एक प्रति २० रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 6 डॉलर, वार्षिक : 35 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा'' के नाम देय

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, 2661087, ई-मेल - hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - www.madhyapradeshrashtrabhasha.com

भारत का सांस्कृतिक-साभ्यतिक विश्वबोध

-अम्बिकादत्त शर्मा

स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात्वर्ती बहुत से विचारक जिन्होंने भारत के सांस्कृतिक-साभ्यतिक विश्वबोध को उसकी आत्मा में प्रतिष्ठ हो कर आत्मसात् किया है (स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, महात्मा गाँधी, के.सी. भट्टाचार्य, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, जडावलाल मेहता, यशदेव शल्य और रमेशचन्द्र शाह) उनकी दृष्टि में भारत की वास्तविक समस्या यह है कि हम 1947 ई. में राजनीतिक रूप से स्वाधीन होकर औपनिवेशिक प्राधिकरण से कदाचित् मुक्त तो हो गये लेकिन यूरोपीयकरण के अंगभूत बने ही हुए हैं। यूरोपीयकरण मानो हमारी समझ में अभ्यान्तरित हो गया है। आज भारत किसी साम्राज्यवादी सत्ता का उपनिवेश नहीं है, फिर भी वह अपनी संस्कृतात्मा पर यूरोपीय सभ्यता के उस शरीर को प्रत्यारोपित किये हुए है जिसकी आत्मा कबके उसे छोड़कर चली गई है। इस समस्या को सही तौर पर समझने के लिए औपनिवेशीकरण और यूरोपीयकरण के अर्थ और निष्पत्तियों को अलग-अलग करके समझना जरूरी है। विशेषकर भारत के सन्दर्भ में तो यह बेहद आवश्यक कार्ययोजना है। औपनिवेशीकरण एक राजनीतिक प्रक्रिया है और उसका लक्ष्य साम्राज्य-विस्तार के लिए परोक्ष-अपरोक्ष तरीकों से राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करना होता है। परन्तु यूरोपीयकरण अपने आप में अधिक व्यापक एक सांस्कृतिक-साभ्यतिक प्रक्रिया है। आधुनिकता के मुखौटे में इसने आज एक बलीयसी विश्व-सभ्यता का रूप अख्तियार कर लिया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वैसे उपनिवेश जिनकी कोई सांस्कृतिक-साभ्यतिक पहचान नहीं रही हो, वे औपनिवेशीकरण से मुक्त केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर हो सकते हैं और इस तरह राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होकर भी वे सभी यूरोपीयकरण की साभ्यतिक प्रक्रिया के अंगमूल बने रह सकते हैं। परन्तु भारत का सन्दर्भ भी क्या ऐसा ही है। इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती कि भारत संस्कृति और सभ्यताओं के बहुध्रुवीय विश्व में एक छोटा-मोटा कोई देश नहीं अपितु आधा ग्लोब है। अपनी विशिष्ट संस्कृति और सभ्यता के कारण ही भारत विश्व की मान्य संस्कृतियों और सभ्यताओं के लिए सदैव हमवतन बना रहा है। अत: भारत की स्वतंत्रता का मूल्यबोध अन्य उपनिवेशों को मिली राजनीतिक स्वतंत्रता से न केवल भिन्न बल्कि व्यापक और वृहत्तर भी है। हमारा स्वतंत्रता आन्दोलन यदि दुनिया की सबसे शक्तिशाली साम्राज्यसत्ता की जड़ों को हिला देने में समर्थ हुआ, तो इसलिए कि स्वतंत्रता का उसके लिए सिर्फ एक राजनीतिक मूल्य नहीं, अपनी संस्कृति और सभ्यता के विश्वबोध को अपने जीवन में प्रतिष्ठापित करने का आदर्श था। वह अपनी खोई हुई पहचान को फिर से हासिल करने का अलख स्वप्न था।